6

तीर्थंकर परमात्मा के सुवर्णकमल विहार का रहस्य

केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा पृथ्वी पर कदम रखने के बजाय देवकृत सुवर्ण कमल पर ही कदम स्थापन करने का क्या कारण है ? इसके बारे में कुछ लोग कहते हैं कि तीर्थंकर परमात्मा तो संसारत्यागी हैं, वे तो कंचन-कामिनी के त्यागी हैं, अपरिग्रही हैं, अतः उनको बैठने के लिये सुवर्ण के सिंहासन व विहार करने के लिये सुवर्ण कमल की रचना क्यों ?

इसके बारे में कोई स्पष्ट कारण व उत्तर जैन धर्म ग्रंथों में प्राप्त नहीं है । किन्तु कुछ आधुनिक चिंतक विद्वान व जैन मुनि इस प्रश्न के उत्तर में ऐसा कहते हैं कि तीर्थंकर परमात्मा को केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद उनके शरीर में से निरंतर विपुल मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित होती रहती है । इस ऊर्जा को धारण करने की क्षमता पृथ्वी में नहीं है । केवल सुवर्ण ही ऐसा पदार्थ है कि जो इस ऊर्जा को धारण कर सकता है । अतएव प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति होने के बाद तुरंत देव सुवर्ण कमल की रचना करते हैं और प्रभु उन पर कदम स्थापन करके विहार करते हैं या उस पर बिराजमान होते हैं या समवसरण में सुवर्ण के सिंहासन पर बिराजमान होकर उपदेश देते हैं और उस समय भी प्रभु के चरण तो सुवर्ण कमल पर ही स्थापित होते हैं ।

इस उत्तर के प्रतिप्रश्न के रूप में हमारे परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विजय सूर्योदयसूरिजी महाराज कहते हैं कि यह बात उचित नहीं है और इस बात को शास्त्र का कोई आधार भी नहीं है और सुवर्ण भी पृथ्वी में उत्पन्न होता है अतः वह भी पृथ्वीकाय ही है । यदि पृथ्वी में केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा की ऊर्जा के विपुल प्रमाण को झेलने की क्षमता नहीं है तो सुवर्ण में वह क्षमता कैसे आ सकती है ? अर्थात् नहीं आ सकती । अतः यही सुवर्ण कमल की रचना का रहस्य कुछ ओर ही है ।

इसके बारे में वैज्ञानिक सिद्धांत के आधार पर विचार करने पर इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया जाय । वर्तमान में विज्ञान में यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक सजीव पदार्थ में से एक प्रकार की शक्ति ऊर्जा निरंतर उत्सर्जित होती रहती है इस शक्ति को विज्ञानी जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(Bio-electro- magnetic-energy) कहते हैं । यह शक्ति नहीं देखी जा सकती है किन्तु उसका अनुभव हो सकता है । क्वचित् अतीन्द्रिय शक्तिवान् मनुष्य इसे देख सकते हैं । जहाँ विद्युत्शक्ति होती है वहाँ चुंबकत्व अवश्य होता है । ये शक्तियाँ परस्पर एक दूसरे के साथ संयोजित ही है ऐसा प्रतिपादन ई. स. 1833 में माइकल फेराडे ने किया ही है और जहाँ विद्युद्-चुंबकीय शक्ति है वहाँ विद्युद्-चुंबकीय क्षेत्र भी होता है ।

भले ही हम जैविक विद्युद्-चुंबकीय क्षेत्र को नहीं देख सकते हैं, किन्तु आज अत्याधुनिक वैज्ञानिक साधन द्वारा किर्लियन फोटोग्राफी से इसके रंगीन फोटोग्राफ्स लिये जा सकते हैं । इतना ही नहीं, उनके रंग के आधार पर और उनकी अपूर्णता के परीक्षण द्वारा रोग का निदान भी किया जाता है।

प्राचीन काल के महापुरुषों ने यही जैविक विद्युद्चुंबकीयक्षेत्र को आभामंडल (aura) नाम दिया है ।

मनुष्य के आभामंडल के बारे में निष्णातों का अभिप्राय है कि कोई भी रोग शरीर में प्रवेश करने के पूर्व तीन माह पहले आभामंडल में उसी रोग का असर पाया जाता है । अतः किर्लियन फोटोग्राफी द्वारा लिये गये आभामंडल के फोटोग्राफ्स के परीक्षण द्वारा रोग को जानकर उसके उपचार करके रोग को शरीर में प्रवेश करता रोका जा सकता है, और इसी प्रकार मनुष्य निरोगी हो सकता है । हालाँकि, उस समय भी रोग सूक्ष्म रूप में तो शरीर में प्रवेश पा चुका होता है । केवल स्थूल रूप में उसका आविर्भाव नहीं पाया जाता है ।

संक्षेप में, जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति विज्ञान सिद्ध वास्तविकता है उसमें कोई शंका नहीं है । इस शक्ति का उत्सर्जन प्रत्येक सजीव पदार्थ में से होता है किन्तु उसके प्रकार व प्रमाण का आधार उसी पदार्थ की शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उत्क्रान्ति पर है । साथ-साथ उसी सजीव पदार्थ की आत्मा को लगे हुये शुभ-अशुभ कर्म व आत्मा की शक्ति को आवृत्त करने वाले कर्म कितनी मात्रा में दूर हुये है ? उस पर भी उसका आधार है । ये सभी परिबल केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा में सब से ज्यादा होते हैं । अतः उनकी जैविक विद्युद्-चुंबकीय शक्ति उत्तमोत्तम प्रकार की व उच्चतम मात्रा मे होती है ।

जैन दार्शनिक परंपरा अनुसार किसी भी जीव को मन, वचन व शरीर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तीन में से कम से कम शरीर तो सब को होता ही है, चाहे वह जीव अत्यंत निम्नतम कक्षा अर्थात् प्राथमिक अवस्था मे क्यों न हो ?

जैनदर्शन अनुसार मन केवल हाथी, गाय, घोडे आदि पशु व चिड़िया, तोता, मैना, कोयल आदि पक्षी, मनुष्य, देव व नारकी को ही होता है । जबकि एकेन्द्रिय माने जाते पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति व बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय व मनरहित पशु, पक्षी, जलचर जीव और असंज्ञी (संमूर्च्छिम) मनुष्य को पौद्गलिक मन नहीं होता है । अतः उन्हीं जीवों को मन द्वारा होने वाला शुभ या अशुभ कर्म का बंध भी नहीं है । अतः उसी कारण से होने वाला जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति/क्षेत्र में परिवर्तन भी नहीं है किन्तु केवल एक शरीर विद्यमान होने से उसके द्वारा होने वाला शुभ या अशुभ कर्मबंध होने से जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति/क्षेत्र में परिवर्तन होता है । संसारी अर्थात् कर्म सहित जीव के लिये यही परिबल कभी भी शून्य नहीं होता है ।

उसी प्रकार संसारी जीव चाहे ऐसी प्राथमिक अवस्था में हो तो भी उसकी आध्यात्मिक शक्ति कभी भी शून्य नहीं होती है ।

निगोद अर्थात् आलू, कंद जैसे साधारण वनस्पतिकाय के जीव में भी चार अघाती कर्म संबंधित और उसमें भी खास तौर पर नामकर्म व वेदनीयकर्म संबंधित शुभकर्म कभी भी शून्य नहीं होता है । ठीक इससे उलटा इन चार कर्म संबंधित चाहे इतने अशुभ कर्म इकट्ठे होने पर भी आत्मा की अनंत शक्ति को पूर्णतया आवृत्त करनेमें समर्थ नहीं हो पाते । उसी प्रकार आत्मा की अनंत शक्ति का घात करने वाले घातीकर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय व अंतराय) का चाहे इतना समूह इकट्ठा होने पर भी आत्मा की अनंत शक्ति को पूर्णतया आवृत्त नहीं कर सकते हैं ।

इस प्रकार समग्र सजीव सृष्टि में सबसे प्राथमिक कक्षा के माने जाते जीव में भी जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति कभी भी शून्य नहीं होती है ।

केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा में --

1. शारीरिक शक्ति सबसे ज्यादा होती है क्योंकि उनके शरीर में प्रथम वज्रऋषभनाराच संघनन (हड्डियाँ की संरचना का एक प्रकार) होता है । जिसमें सबसे ज्यादा उपसर्ग-परिषह आदि सहन करने की ताकत होती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालचक्र उन पर छोडने पर भी उनकी मृत्यु या शरीर का नाश नहीं होता है ।

2. शारीरिक शक्ति सबसे ज्यादा होने की वजह से मनोबल/मानसिक शक्ति भी सबसे ज्यादा होती है क्योंकि शरीर मजबूत हो तो ही मन मजबूत रह सकता है । अतएव प्रथम संघनन वाले मनुष्य को देव भी ध्यान में से विचलित नहीं कर सकते हैं ।

3. मन, वचन, काया की एकाग्रता ही ध्यान है । अतः जिनका शरीर व मन मजबूत होता है उसका ध्यान भी उत्कृष्ट / श्रेष्ठ होता है । अतएव आध्यात्मिक परिस्थिति भी उत्तमोत्तम होती है ।

4. जिनको शुभ कर्म का ज्यादा उदय होता है उनकी जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति भी ज्यादा होती है । तीर्थंकर परमात्मा ने पूर्व भव में शुभकार्य व शुभभाव द्वारा सब से विशिष्ट पुण्य युक्त तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया है । उसके उदय व उसके साथ संबंध रखनेवाले अन्य शुभकर्म भी उदय में आते हैं । अतः उनकी जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति भी सबसे ज्यादा होती है ।

5. तीर्थंकर होने की वजह से प्रायः उनको किसी भी प्रकार के अशुभ कर्म का उदय नहीं होता है । अतः उनसे संबंधित जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति में किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं पाया जाता है ।

6. आत्मा के गुणों को आवृत्त करने वाले, आत्मा की अनंत शक्ति को प्रगट करने में बाधक मुख्य चार कर्म हैं : (1) ज्ञानावरणीय, (2) दर्शनावरणीय, (3) मोहनीय और (4) अंतराय, जिसे घातीकर्म कहते है । ये कर्म केवलज्ञानी में पूर्णतया दूर हो जाते हैं । अतः उनकी आत्मा की शक्ति प्रकट हो जाती है । उसका वे स्वयं व अन्य जीव प्रगटरूप से अनुभव करते हैं ।

ऊपर बताया उसी प्रकार छः प्रकार से केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा की शक्ति उत्तमोत्तम प्रकार की व सबसे ज्यादा प्रगट होती है । यही शक्ति सूक्ष्म जैविक विद्युद्‌चुंबकीय ऊर्जा के स्वरूप में होती है । इस ऊर्जा को पृथ्वी सहन न कर सकने से सुवर्ण कमल पर प्रभु पाद स्थापन करके विहार करते हैं ऐसा नहीं है किन्तु इस शक्ति से वातावरण ज्यादा शक्तिशाली बन जाता है । इस शक्ति को मनुष्य या अन्य प्राणी झेलने में समर्थ न होने से या झेलने पर उसको लाभ होने की बजाय नुकसान होने की संभावना होने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या प्रभु की उच्चतम शक्ति का लोगों को ज्यादा लाभ मिले उसी कारण से तीर्थंकर परमात्मा की उच्च जैविक विद्युद्चुंबकीय ऊर्जा को पृथ्वी में उतारने लिये देव सुवर्ण कमल की रचना करते हैं और प्रभु उस पर पैर स्थापन करके विहार करते हैं ।

सामान्य तौर से हम देखते हैं कि गगनचुंबी मकान पर तांबे की तार लगायी जाती है जिसकी दूसरी छोर जमीन में गाडी होती है । उसका कारण यह है कि वर्षा ऋतु में वातावरण में भारी दबावयुक्त बिजली को उसी तार द्वारा जमीन में उतारी जाती है । इससे आसपास में अन्यत्र कहीं भी बिजली पडती नहीं है । बस, इसी सिद्धांत पर देव प्रभु के लिये सुवर्ण कमल की रचना करते हैं ऐसा मेरा अपना मंतव्य है क्योंकि सुवर्ण बिजली के लिये अत्यंत सूक्ष्मग्राही (sensitive) पदार्थ है और तांबे से भी वह अतिसुवाहक (most conductive) है । अतः सुवर्ण कमल द्वारा प्रभु की यही शक्ति जमीन में उतर जाती है जिसके प्रभाव से प्रभु जहाँ भी विहार करते हैं वहाँ प्रभु के शरीर से निश्चित योजन के विस्तार में तथा प्रभु विहार करके अन्यत्र जाने के बाद भी उस स्थान में अर्थात् प्रभु ने जहाँ भी विहार किया हो वहाँ छः महिने तक किसी भी प्रकार के रोग, दुष्काल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मच्छर, मक्खी, पतंग, तीड इत्यादि क्षुद्र जंतुओं के उपद्रव या ऐसी कुदरती आपत्तियाँ नहीं आती है । इतना ही नहीं, उस क्षेत्र में स्थित मनुष्य व प्राणीओं की अशुभ वृत्तियाँ भी दूर हो जाती है ।

अतएव आज से 2500 वर्ष पूर्व की श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी की जो विहारभूमि थी वह मगध अर्थात् आज का बिहार व उनकी कल्याणक भूमियाँ, खास तौर से केवलज्ञान कल्याणक की भूमि ऋजुवालिका नदी का तट व निर्वाण कल्याणक की भूमि - पावापुरी का वातावरण आज भी पवित्र जीवों को अलौकिक दिव्य अनुभूति कराता है ।

इस प्रकार प्रभु निरंतर समग्र सृष्टि पर उपकार करते रहते हैं ।

यह है प्रभु ने पूर्व भव में भावित *" सवि जीव करुं शासनरसी "* की उत्कृष्ट भावना का उत्कृष्ट परिणाम ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org